द्विवेदी युग

साहित्य या इतिहास में किसी कालखण्ड को व्यक्ति विशेष के नाम से अभिहित करना उस व्यक्ति के महत्त्व और उनकी देन को रेखांकित करना है। हिन्दी साहित्य को रूढ़ियों से स्वच्छन्दता, जड़ता से प्रगति और शृंगारिकता से राष्ट्रीयता की तरफ उन्मुख करने में बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों का बहुत महत्त्व है। इस कालखण्ड के पथ प्रदर्शक, विचारक, सम्पादक, साहित्यकार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस कालखण्ड का नाम द्विवेदी युग उचित ही है।

भारतेन्दु के बाद पंद्रह वर्ष का समय सन् 1885 से 1900 खड़ीबोली हिन्दी के लिए संघर्ष का समय था। हिन्दी साहित्य में इस समय ब्रज भाषा-खड़ीबोली का संघर्ष चरम पर था। ब्रज भाषा के समर्थकों का मानना था कि खड़ीबोली काव्य के लिए उपयुक्त नहीं है, परन्तु खड़ीबोली के समर्थक खड़ीबोली के व्यवहार और संस्कार में लगे रहे।ऐसा मानने वालों की संख्या ज्यादा थी कि साहित्य में गद्य और पद्य की दो अलग अलग भाषाएँ नहीं होनी चाहिए। ध्यातव्य है कि भारतेन्दु युग में गद्य की भाषा खड़ीबोली थी, जबकि पद्य की भाषा ब्रज भाषा। धीरे धीरे यह विचार विकसित होने लगा था कि दोनों की भाषा एक होनी चाहिए। चूँकि खड़ीबोली का क्षेत्र व्यापक था, इसलिए खड़ीबोली को पद्य का भी माध्यम बनाने का प्रयास होना चाहिए।

खड़ीबोली और हिन्दी साहित्य के सौभाग्य से सन् 1903 में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने *सरस्वती* पत्रिका के सम्पादन का भार सँभाला। वे सन् 1920 तक श्रम और लगन के साथ इसका सम्पादन करते रहे। *सरस्वती* के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी ने खड़ीबोली के उत्थान के लिए जो प्रयास किया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके प्रोत्साहन और मार्गदर्शन के फलस्वरूप कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। वे स्वयं कवि, निबन्धकार, आलोचक, अनुवादक तथा सम्पादक थे। उनके लिखे हुए मौलिक और अनूदित गद्य-पद्य ग्रन्थों की संख्या

लगभग अस्सी है। खड़ीबोली को परिष्कृत कर उसके स्वरूप को स्थिरता प्रदान करने वालों में द्विवेदी जी अग्रगण्य हैं। रीतिकालीन शृंगारिक परम्परा और प्रवृतियों से हटकर नई अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति की शुरुआत द्विवेदी जी के समय में हुई। अपने समकालीन रचनाकारों को खड़ीबोली में रचना के लिए वे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे।

भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में जो अराजकता और स्वछन्दता चल रही थी, द्विवेदी जी ने उस पर अंकुश लगाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस कार्य की महत्ता का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। उनके शब्दों में -"व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे। *सरस्वती* के सम्पादक के रूप मे उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया। यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह-तरह की बातें बनाकर करते रहे, पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे।" *(हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृष्ठ 268) शुक्ल जी के अनुसार गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण तब तक बना रहेगा, जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी।

सरस्वती के माध्यम से द्विवदी जी ने अपने विचारों एवं सिद्धान्तों को हिन्दी समाज के समक्ष बड़ी योग्यता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुतः द्विवेदी युग के आरम्भ में खड़ीबोली अनगढ़, शुष्क और अस्थिर रूप में थी। अनवरत प्रयास के फलस्वरूप धीरे-धीरे खड़ीबोली का स्वरूप स्थिर, निश्चित सुघड़ और मधुर बना। गद्य और पद्य की भाषा का एकीकरण हुआ। खड़ीबोली गद्य और पद्य दोनों में स्थापित हुई। डॉ. नगेन्द्र द्वारा की गई यह टिपण्णी सटीक है, "असल में आलोच्यकाल (द्विवेदी युग) का इतिहास खड़ीबोली के तुतलाने से लेकर उसके स्फीत वाग्धारा तक पहुँचने का इतिहास है।" *(हिन्दी साहित्य का इतिहास,* डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-507)

द्विवेदी युग में न सिर्फ भाषा की एकरूपता स्थापित हुई, बल्कि विषयों का विस्तार भी हुआ। द्विवेदी जी साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोष' मानते थे। *सरस्वती* बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण का विश्वकोश था। आचार्य द्विवेदी जी की सन् 1908 में प्रकाशित पुस्तक *सम्पतिशास्त्र* भारत के सामाजिक-आर्थिक और

राजनीतिक यथार्थ का अभूतपूर्व चित्र प्रस्तुत करती है। साहित्य में विषयों के विस्तार के साथ ही ज्ञान क्षेत्र का विस्तार हुआ। खड़ीबोली के पाठकों की संख्या बढ़ी जिससे हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा मिली। द्विवेदी जी के प्रयासों से न सिर्फ भाषा की एकरूपता हुई, बल्कि विषयों का भी विस्तार हुआ। भाषा और साहित्य के साथ-साथ उन्होंने विज्ञान, दर्शन, समाज आदि विषयों पर भी लेख लिखवाए। देश की पराधीनता, किसानों और मजदूरों की विपन्नता, विधवाओं की दुर्दशा, शोषितों पर होने वाले अत्याचार, महाजन, ज़मीनदार, पुलिस आदि द्वारा होने वाले अत्याचार साहित्यिक विधाओं के विषय बने।

खड़ीबोली के विकास में द्विवेदी युग का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि द्विवेदी जी ने विभिन भाषाओं - संस्कृत, अंग्रेज़ी, बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए और करवाए। खड़ी बोली हिन्दी में विषयों के विस्तार के साथ शैली की अनेकरूपता का भी विकास हुआ। इस युग में परिमार्जित शैली का विकास हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे पहचानते हुए लिखा - "ऐसे लोगों की संख्या कुछ बढ़ी, जिनकी शैली में उनकी निज की शिष्टता रहती थी, जिनकी लिखावट को परखकर लोग यह कह सकते थे कि यह उन्हीं की है। साथ ही वाक्य विन्यास से अधिक सफाई और व्यवस्था आई। विराम चिह्नों का आवश्यक प्रयोग होने लगा।...कुछ लेखकों की कृपा से हिन्दी की अर्थोद्घाटिनी शक्ति की अच्छी वृद्धि और अभिव्यंजन प्रणाली का भी अच्छा प्रसार हुआ। सघन और गुम्फित विचार सूत्रों को व्यक्त करने वाली तथा सूक्ष्म और गूढ़ भावों को झलकाने वाली भाषा हिन्दी साहित्य को कुछ-कुछ प्राप्त होने लगी।" (*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-268) द्विवेदी युग में खड़ीबोली हिन्दी साहित्य की मुख्य भाषा बन गई।

द्विवेदी युग में हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

1. खड़ीबोली हिन्दी गद्य और पद्य दोनों की भाषा बन गई-

द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि खड़ीबोली हिन्दी गद्य और पद्य दोनों की भाषा बन गई। भारतेन्दु युग में खड़ीबोली हिन्दी कविता की शुरुआत हो गई थी, परन्तु साहित्यिक स्तर पर उसे स्वीकृति नहीं मिली। श्रीधर पाठक पहले ब्रजभाषा में कविता लिखते थे किन्तु खड़ीबोली आन्दोलन के समय उन्होंने

खड़ीबोली में प्रथम कविता *एकान्तवासी योगी* शीर्षक से सन् 1983 में लिखी। इसके बाद उन्होंने खड़ीबोली की परिमार्जित शैली अपनाकर अनेक ररचनाएँ की। खड़ीबोली के इस आदिकवि की महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। कविता के लिए शृंगार, प्रेम और युवा अवस्था की अल्हड़ रंगीली कविताओं का बहिष्कार कर राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीयता, समाजसुधार, शिक्षा, नैतिकता, आचरण की मर्यादा आदि विषयों को स्थान देना और साहित्यकारों को प्रोत्साहित करना द्विवेदी जी का लक्ष्य बन गया था। अनेक कवियों ने ब्रजभाषा छोड़कर खड़ीबोली अपनाई।

2. रीतिवाद का विरोध है -

द्विवेदी युग की कविता में रीतिवाद का विरोध है। रीतिकालीन जड़ संस्कारों से द्विवेदीयुगीन कविता मुक्त हुई। श्रीधर पाठक खड़ीबोली के प्रथम कवि हैं, जिनमें काव्यगत स्वच्छन्दता का दर्शन हुआ। सन् 1900 में उन्होंने *गुनवन्त हेमन्त* शीर्षक से कविता लिखी। उन्होंने छन्दों को नए साँचे में ढाला। द्विवेदी युग में प्रबन्ध काव्य भी पर्याप्त संख्या में लिखे गए। पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित *प्रियप्रवास* खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है। यह काव्य प्रायः भावव्यंजनात्मक और वर्णनात्मक है। खड़ीबोली को काव्योपयुक्त बनाने में हरिऔध का नाम अग्रगण्य है। यशोदा का सहृदय सम्बन्ध विरह दृष्टव्य है-

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दुःख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है?
(हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-498)

हरिऔध बोलचाल की मुहावरेदार ज़बान में लिखते थे। *चोखे चौपदे* ऐसा ही संग्रह है। एक रोचक उदाहरण दृष्टव्य है-

क्यों पले पीसकर किसी को तू !
है पालिसी बहुत बुरी तेरी।
हम रहे चाहते पटाना ही।
पेट तुझसे पटी नहीं मेरी।
(*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-330)

महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी में कवि के रूप में प्रसिद्ध नहीं हैं, लेकिन खड़ीबोली में उन्होंने भी कविताएँ लिखी हैं। द्विवेदी जी बोलचाल की भाषा के हिमायती थे। अतः उनकी कविता की भाषा भी गद्यमय है।

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग में खड़ीबोली के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनकी कविताओं से खड़ीबोली हिन्दी को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने में अभूतपूर्व सहायता मिली है। उनके द्वारा रचित *भारत-भारती* युगीन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का मूर्त रूप था। *भारत-भारती* (1912) की पंक्तियाँ हिन्दीभाषी क्षेत्र के बहुत लोगों को कण्ठस्थ थीं। *भारत-भारती* युगवाणी का मूर्तरूप है। इसमें भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्र खींचा गया है।

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।
(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ-18)

3.मुक्तक,गीतऔरगेयपद -

मैथिलीशरण गुप्त ने *जयद्रथ वध, पंचवटी, साकेत* और *यशोधरा* जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध काव्यग्रन्थों की रचना की। मुक्तक, गीत और गेयपद भी लिखे। *मेघनादवध* का अनुवाद उन्होंने अतुकान्त कविता में किया। राय देवीप्रसाद पूर्ण की एक लम्बी कविता है *वसन्त वियोग*।इसमें भारतभूमि की कल्पना एक उद्यान के रूप में की गई है।

4. देशभक्ति -

रामनरेश त्रिपाठी इस युग के कवियों में महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कविता देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। उनकी भाषा अत्यन्त व्यवस्थित है। उनके प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ हैं-*मिलन, पथिक और स्वप्न*। इस युग के दूसरे कवियों में रामचरित उपाध्याय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय, पं. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', पं. नाथूराम शर्मा शंकर, पं. रूपनारायण पाण्डेय आदि का नाम लिया जा सकता है।

5. आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास -

आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास द्विवेदी युग में ही हुआ। हिन्दी कहानी का विकास द्विवेदी युग और सरस्वती पत्रिका से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। पं. किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी *इन्दुमती* सरस्वती में सन् 1900 में प्रकाशित हुई। हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी को लेकर विवाद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस सन्दर्भ में सरस्वती में सन् 1900 से 1907 तक प्रकाशित छह कहानियों का उल्लेख किया है। इनमें *इन्दुमती* के अलावा किशोरीलाल गोस्वामी की दूसरी कहानी *गुलबहार* (1902), भगवान दास की *प्लेग की चुड़ैल* (1902), रामचन्द्र शुक्ल की *ग्यारह वर्ष का समय* (1903), गिरिजादत्त वाजपेयी की *पण्डित और पण्डितानी* (1903) और बंग महिला (राजेन्द्रबाला घोष) की *दुलाई वाली* (1907) शामिल हैं।

इस सन्दर्भ में सन् 1901 में प्रकाशित माधव राव सप्रे की कहानी *एक टोकरी भर मिट्टी* उल्लेखनीय है। *एक टोकरी भर मिट्टी* कहानी को कुछ विद्वानों ने हिन्दी कहानी की यथार्थवादी परम्परा के सूत्रपात का श्रेय दिया है। वस्तुत: बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की कहानियों में चमत्कार की प्रधानता है। इनमें रचनात्मक प्रौढ़ता का अभाव है, लेकिन आदर्श और बलिदान के आवरण में भी इनमें अपने समय की आहट है। *पण्डित और पण्डितानी* कहानी के केन्द्र में अनमेल विवाह की समस्या है। *दुलाईवाली* में बंगाल विभाजन की पृष्ठभूमि में स्वदेशी आन्दोलन की गूँज है।

द्विवेदी युग के आरम्भिक दशक में धनपत राय के नाम से प्रेमचन्द उर्दू में कहानियाँ लिख रहे थे। उर्दू कहानियों का उनका पहला संग्रह *सोजे वतन* अंग्रेजी सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिया गया था। हिन्दी कहानी के विकास में बीसवीं सदी के दूसरे दशक का अधिक महत्त्व है। आगे चलकर कहानी की जिन दो समानान्तर धाराओं -सामाजिक यथार्थवादी और वैयक्तिक भाववादी - का विकास हुआ उसकी शुरुआत यहीं से होती है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रेम को वर्जित क्षेत्र मानकर साहित्य में प्रायः नैतिक और सामाजिक मूल्यों को प्रोत्साहन दिया। नीतिगत भेद के चलते सन् 1909 में काशी से *इन्दु* प्रत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पर जयशंकर प्रसाद का प्रभाव था। सन् 1911 में जयशंकर प्रसाद की कहानी *ग्राम* इन्दु में प्रकाशित हुई। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की पहली कहानी *रक्षाबन्धन* सन् 1913

में *सरस्वती* में प्रकाशित हुई। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी *कानों में कंगना* सन् 1913 *इन्दु* में प्रकाशित हुई।

सन् 1915 हिन्दी कहानी के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की महत्त्वपूर्ण कहानी *उसने कहा था* सन् 1915 में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष प्रेमचन्द *सरस्वती* में *सौत* कहानी के प्रकाशन के साथ उर्दू से हिन्दी में आए। *उसने कहा था* हिन्दी कहानी को आरम्भ में ही ऊँचाई पर खड़ा कर दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे अद्वितीय कहानी की संज्ञा दी। प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) की पृष्ठभूमि में लिखी गई इस कहानी में निहित त्यागमय प्रेम का आदर्श भारतीय संस्कृति की उदात्तता के अनुकूल है। कहानी के नायक लहना सिंह ने प्रेम और कर्तव्यबोध के चलते जान की बाजी लगा दी। हिन्दी कहानी में शिल्प की दृष्टि से पहली बार इस कहानी में फ्लैशबैक का प्रौढ़-कुशल प्रयोग किया गया। मधुरेश के अनुसार *उसने कहा था* हिन्दी की पहली कहानी है जिसने शिल्प विधान की दृष्टि से हिन्दी कहानी को एक झटके में ही प्रौढ़ बना दिया।" (हिन्दी कहानी विकास, पृष्ठ 18) गुलेरी की दो अन्य महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं– *बुद्धू का काँटा* और *सुखमय जीवन*।

राधिकारमण सिंह की कहानी *माँ* वैधव्य और मातृत्व को संवेदनशीलता के साथ व्यक्त करती है। हिन्दी कहानी को आरम्भिक काल में ही प्रेमचन्द के रूप में एक बहुमूल्य रत्न मिला। सन् 1916 में सरस्वती में प्रकाशित प्रेमचन्द की कहानी *पंचपरमेश्वर* को अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसमें ग्रामीण जीवन की सहृदयता औरकाइयाँपन व्यक्त हुआ है। इसमें शिल्पगत नवीनता नहीं है,लेकिन मनोवैज्ञानिकता का पुट है।

6. हिन्दी उपन्यास की अविछिन्नपरम्परा -

हिन्दी उपन्यास की शुरुआत भारतेन्दु युग में ही हो गई थी किन्तु, इसकी अविछिन्नपरम्परा द्विवेदी युग से शुरू हुई।द्विवेदी युग के उपन्यासों में मध्यकालीन कथाओं का प्रभाव ज्यादा है। इस काल में मौलिक उपन्यासों की रचना भारतेन्दु युग की तर्ज़ पर ही हुई। मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त द्विवेदी युग में दूसरी भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में हुआ। शरतचन्द्र के उपन्यास हिन्दी पाठकों में

लोकप्रिय हो चुके थे।बांग्ला, उर्दू और मराठी के साथ अंग्रेजी के भी कई उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में हुए।

पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी द्विवेदी युग के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। गोस्वामी जी उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक से ही उपन्यास लिखते आ रहे थे। इनके उपन्यासों में यौन-भावना की प्रधानता है। इनमें वासना के चटकीले रंग के साथ कुछ सामाजिक पाखण्ड का भी उद्घाटन है। इनकी भाषा सहज है लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासों में कालदोष है। गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखे। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और श्री लज्जाराम मेहता ने भी उपन्यास लिखे। किशोरीलाल गोस्वामी ने अपने उपन्यासों के प्रकाशन के लिए सन् 1898 से *उपन्यास* नामक मासिक पत्र निकालना शुरू कर दिया था।

7. विभिन्न भाषाओं से हिन्दी में नाटकों का अनुवाद-

भारतेन्दु युग में नाटकों के प्रभावपूर्ण पुनर्प्रचलन को आचार्य शुक्ल ने विलक्षण माना था। यह भी विलक्षण बात है कि भारतेन्दु युग में प्रचलित और प्रतिष्ठित नाटक परम्परा द्विवेदी युग में उतने महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रचलित नहीं हुई।भारतेन्दु युग नाटकों की दृष्टि से जितना अधिक समृद्ध है, द्विवेदी युग उतना कम समृद्ध है। द्विवेदी युग में मौलिक नाटकों का अभाव पाया जाता है। इस युग के नाटक संख्या की दृष्टि से नहीं,महत्त्व की दृष्टि से कमजोर हैं।

द्विवेदी युग के मौलिक नाटककारों में किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, शिवनन्दनसहाय और रायदेवी प्रसाद पूर्ण के नाम उल्लेखनीय हैं, परन्तु ये मूलतः नाटककार नहीं हैं। ये सभी रचनाकार हिन्दी साहित्य में मूलतः दूसरी विधाओं के लिए ख्यात हैं। पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित नाटक *चौपट चपेट* एक प्रहसन है। गोस्वमी द्वारा रचित नाटक *मयंक मंजरी* एक सामान्य कोटि का नाटक है। हरिऔध ने *रुक्मिणी परिणय* और *प्रद्युम्न विजय व्यायोग* नामक नाटक लिखा।

विभिन्न भाषाओं से हिन्दी में नाटकों का अनुवाद द्विवेदी युग में बड़े पैमाने पर हुआ। संस्कृत, बांग्ला के साथ अंग्रेज़ी के महत्त्वपूर्ण नाटकों के अनुवाद हिन्दी में

हुए। शेक्सपियर के नाटक रोमियो जूलियट, मैकबेथ और हैमलेट का हिन्दी में अनुवाद हुआ। संस्कृत के नाटक *मृच्छकटिकम्, उत्तररामचरित, मालतीमाधव* और *मालविकाग्निमित्रवम्* का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

8. निबन्ध का विकास -

द्विवेदी युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गद्य-विधा निबन्ध है। *सरस्वती* के सम्पादन के साथ द्विवेदी जी ने पाठकों की जानकारी के लिए अनेक विषयों पर लेख लिखवाकर प्रकाशित किए। इस युग के साहित्य में वैचारिकता का विकास हुआ। विविध विषयों पर लिखे गए गम्भीर लेखों का वैचारिकता से अभिन्न संबंध था। वैचारिकता का सम्बन्ध निबन्ध से भी है। यद्यपि निबन्ध गम्भीर लेखों से कई मायने में भिन्न भी हैं। निबन्ध में व्यक्तित्व की जीवन्तता और शैली का अनूठापन दृष्टिगोचर होता है। द्विवेदी युग में गम्भीर और ललित दोनों प्रकार के निबन्ध लिखे गए, लेकिन विचारपरक निबन्ध अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अंग्रेज़ी के लेखक बेकन के निबन्धों के अनुवाद हिन्दी में *बेकन विचार रत्नावली* के नाम से स्वयं द्विवेदी जी ने किया था। द्विवेदी जी के निबन्धों का तेवर नियामक और व्यवस्थापक है, चाहे *कवि और कविता* पर लिख रहे हों या *क्या हिन्दी नाम की कोई भाषा ही नहीं*। द्विवेदी जी के निबन्धों में कलात्मकता की बजाय बात समझाकर कहने की प्रवृत्ति अधिक है। वस्तुतः द्विवेदी जी का उद्देश्य विविध विषयों के ज्ञान को समेटकर हिन्दी पाठकों तक पहुँचा देना था। निबन्धों के माध्यम से द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य को ज्ञान समृद्ध करके युगीन आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में महनीय प्रयास कर रहे थे।

बालमुकुन्द गुप्त ने सामयिक और राजनीतिक परिस्थितियों को लेकर कई व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखे, जिनमें *शिवशम्भू काचिट्ठा* अत्यन्त लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी भाषा शैली ओजपूर्ण, तीखी, चुटीली, व्यंग्यपूर्ण और प्रवाहपूर्ण है। इनकी शैली भारतेन्दुयुगीन लेखकों की शैली के निकट है। श्यामसुन्दरदास ने प्रायः विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर निबन्ध लिखा। इनके निबन्ध उस समय की बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबन्धों में प्राचीनता और नवीनता का संगम दृष्टिगोचर होता है। इनका दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय है। इनके निबन्धों में प्रसंग-गर्भत्व के साथ व्यंग्य-विनोद का रंग भी है। *कछुआ धरम* और *मारेसि मोहि कुठाँव* इनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। सरदार पूर्ण सिंह

के निबन्धों में विचारों और भावों को एक अनूठे ढंग से मिश्रित करने वाली एक नई शैली मिलती है। इनके निबन्धों में *आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता* आदि उल्लेखनीय हैं। *मजदूरी और प्रेम* में व्यक्त श्रम का सौन्दर्य आधुनिक सौन्दर्यबोध का द्योतक है।

रामचन्द्र शुक्ल, द्विवेदी युग के अन्यतम निबन्धकार हैं। यद्यपि रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों का उच्चतर विकास द्विवेदी युग के बाद हुआ, लेकिन उनके अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्धों का रचनाकाल द्विवेदी युग ही है। शुक्ल जी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निबन्ध *कविता क्या है* पहले-पहले सन् 1909 में प्रकाशित हुआ। शुक्ल जी के अनेक मनोवैज्ञानिक निबन्ध, जैसे-*श्रद्धा-भक्ति, करुणा, लोभ* और *प्रीति* आदि सन् 1912 से 1920 के बीच *नागरी प्रचारिणी सभा* की पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। द्विवेदी युग में वर्णनात्मक, भावात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक आदि सभी शैलियों में निबन्ध लिखे गए। इसमें सन्देह नहीं की आधुनिक युग की नवीन चेतना विचारात्मकता के रूप में हिन्दी साहित्य में निबन्धों के माध्यम से न सिर्फ प्रविष्ट हुई बल्कि उसने हिन्दी साहित्य को वैचारिकता से समृद्ध करके हिन्दी जाति के लोगों की चेतना का विस्तार भी किया। इस दृष्टि से द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य का ऐतिहासिक योगदान बना रहेगा।

युगीन वैचारिकता के दबाव से हिन्दी में न सिर्फ निबन्ध साहित्य समृद्ध हुआ, बल्कि आलोचना का क्षेत्र भी मजबूत हुआ। द्विवेदीयुगीन आलोचना में रीतिवादी और आधुनिक प्रवृत्तियों में द्वन्द्व है। शास्त्रीय आलोचना रीतिवादी पैमानों यथा नायिका भेद, अलंकार आदि की दृष्टि से साहित्य की परख करती थी। रीति विरोधी आलोचना ज्ञान-विज्ञान के आलोक में विकसित नए जीवन मूल्यों के मापदण्ड पर साहित्य का मूल्यांकन करती थी। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचना से हिन्दी रचनाकारों को नवीन युग के अनुरूप वस्तु और रूप के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने साहित्य, मुख्यतः कविता को युगानुरूप स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने कविता को केवल विलास की सामग्री नहीं माना। उन्होंने कहा -"कविता यदि यथार्थ में कविता है तो सम्भव नहीं कि उसे सुनकर कुछ असर न हो।" (*हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास,* विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ-87) उन्होंने बुरे साहित्य के नुकसान भी बताए।

9. कविता गद्य और पद्य दोनों -

कविता के रूप पक्ष और भाव पक्ष के सन्दर्भ में द्विवेदी जी की दृष्टि आधुनिक थी। उन्होंने तुक और अनुप्रास को कविता के लिए अनिवार्य नहीं माना। उनके अनुसार कविता गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है। यह अपने आप में एक क्रान्तिकारी विचार है। रीतिवादी साहित्य का विरोध करने के लिए उन्होंने नायिका भेद, अलंकार और ब्रजभाषा में काव्यरचना का विरोध किया। उन्होंने साहित्य के लिए सामाजिक हित, यथार्थ चित्रण, प्रकृति-सौन्दर्य और मानव-मनोविज्ञान को उचित विषय बताया। हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलोचक माने जाने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विचारात्मक लेखन की शुरुआत द्विवेदी युग में ही की थी। उनका *साहित्य* शीर्षक अनूदित निबन्ध सन् 1904 में सरस्वती में छपा था, किन्तु उनके आलोचनात्मक ग्रन्थ बाद में प्रकाशित हुए।

10. हिन्दी आलोचना की शुरुआत -

पुस्तक समीक्षा का सूत्रपात भारतेन्दु युग में हो चुका था। किसी एक ही रचनाकार का गुण-दोष दिखाने के लिए हिन्दी आलोचना की पहली पुस्तक महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत *हिन्दीकालिदास की आलोचना* है। द्विवेदी जी ने कालिदास की निरंकुशता पर भी गम्भीर विचार किया। द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना के सामान्यतः पाँच रूप मिलते हैं- शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, अनुसन्धानपरक आलोचना, परिचयात्मक आलोचना तथा व्याख्यात्मक आलोचना। मिश्रबन्धुओं ने शृंगारी कवि देव को ऊँचा स्थान प्रदान करते हुए *हिन्दी नवरत्न* में सूर-तुलसी को समकक्ष रखा तो श्रीधर पाठककी खड़ीबोली की नूतन स्वच्छन्द कविताओं का स्वागत भी किया।

तुलनात्मक आलोचना का रोचक रूप द्विवेदी युग में दिखाई पड़ता है। मिश्रबन्धुओं के जवाब में लाला भगवानदीन ने *बिहारी और देव* लिखकर बिहारी को देव से बड़ा कवि सिद्ध किया। इस विवाद में पं.पद्मसिंह शर्मा ने भी हिस्सा लेकर अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर तुलनात्मक आलोचना को एक ऊँचाई प्रदान की। इस युग में अनुसन्धानपरक आलोचना का विकास नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1897) के प्रकाशन से हुआ। परिचयात्मक आलोचनाएँ *सरस्वती* में प्रकाशित हुईं जो प्रायः स्वयं द्विवेदी जी द्वारा लिखी गई थीं।

रीतिवादी आलोचक खड़ीबोली में रचित कविताओं को व्यर्थ और नीरस कहते थे। लाला भगवानदीन को *भारत भारती* और *जयद्रथ वध* दोषपूर्ण लगे। पद्मसिंह शर्मा भी खड़ीबोली काव्य को *नीरस* और *कर्णकटु* कहते थे। द्विवेदी युग में परिवर्तन ऐसा हुआ कि ब्रजभाषा के साथ *भाषा* शब्द जुड़ा है, लेकिन वह बोली बन गई, जबकि खड़ीबोली जिसके साथ *बोली* लगा है वह भाषा बन गई। द्विवेदी युग में खड़ीबोली हिन्दी का पर्याय हो गई।

1. **निष्कर्ष**

खड़ीबोली हिन्दी के विकास में महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके युग का अप्रतिम योगदान है। *सरस्वती* के सम्पादकके रूप में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी की अतुलनीय सेवा की।महावीरप्रसाद द्विवेदी ने न सिर्फ खड़ीबोली के प्रयोग को बढ़ावा दिया, बल्कि उसके रूप को परिमार्जित और परिष्कृत भी किया। द्विवेदी युग की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता गद्य और पद्य की भाषा का एक होना है।इस युग में कविता की प्रधान भाषा भी खड़ीबोली हो गई। इसी युग में आधुनिक हिन्दी कहानी का सूत्रपात हुआ। गद्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधा निबन्ध द्विवेदी युग में परिष्कृत और परिमार्जित हुई। इसी युग में नाटक, उपन्यास, आलोचना के साथ विविध विषयों और भाषाओं से अनुवाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ।